International Journal of Advanced Research in Arts, Science, Engineering & Management (IJARASEM)

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

सिद्धों का जन्म मानस पर प्रभाव

DR. YASHWANT SHAURYA

Assistant Professor, Department of History, Maulana Azad University, Bujhawad, Jodhpur, Rajasthan, India

सार

सिद्ध साहित्य ब्रजयानी सिद्धों के द्वारा रचा गया साहित्य है। इनका संबंध बौद्ध धर्म से है। ये भारत के पूर्वी भाग में सक्रिय थे। इनके ग्रंथों की संख्या 84 मानी जाती है सिद्ध साहित्य का प्रारंभ आठवीं सदी से लेकर तेरे सदी मन जाती है जिनमें सरहप्पा, शबरप्पा, लुइप्पा, डोम्भिप्पा, कुक्कुरिप्पा (कणहपा) आदि मुख्य हैं। इन्होंने अपभ्रंश मिश्रित पुरानी हिंदी तथा अपभ्रंश में रचनाएं की हैं। सरहप्पा प्रथम सिद्ध कवि थे। राहुल सांकृत्यायन ने इन्हें हिन्दी का प्रथम कवि माना है। साधना अवस्था से निकली सिद्धों की वाणी 'चरिया गीत / चर्यागीत' कहलाती है। बौद्ध धर्म की दो शाखाएंहीनयान,महायान सिद्ध साहित्य महायान शाखा से संबंधित साहित्य था सिद्ध साहित्य में जातिवाद और वाह्याचारों पर प्रहार किया गया है। इसमें देहवाद का महिमा मण्डन और सहज साधना पर बल दिया गया है। इसमें महासुखवाद द्वारा ईश्वरत्व की प्राप्ति पर बल दिया गया है। सिद्ध साहित्य के रचयिताओं में लुईपा सर्वश्रेष्ठ हैं। सिद्ध साहित्य के प्रमुख कवि सरहपा दोहा कोष 769 ई. शबरपा चदपिद 780 ई. कण्हपा 74 ग्रंथ 820 ई. डोम्मिप् डोम्बि, गीतिक, योगचर्चा, अक्षरादकोष कुक्कुरिपा 16 ग्रंथ 840 ई.

परिचय

सिद्धों का चरम उत्कर्ष काल आठवीं से दसवीं शताब्दियों के मध्य था। इनके प्रमुख केन्द्र श्रीपर्वत, अर्बुदपर्वत, तक्षशिला, नालन्दा, असम, और बिहार थे। सिद्धों को पालवंश का संरक्षण प्राप्त था। बाद में मुसलमान अक्रमाणकारियों से त्रस्त और दुखी होकर सिद्ध 'भोर' देश अथार्त नेपाल, भूटान, तिब्बत की ओर चले गए।

सिद्धों के विषय में सबसे पहली जानकारी ज्योतिरीश्वर ठाकुर की रचना 'वर्णरत्नाकर' से मिलती है। सिद्धों की रचनाओं की खोज पहले हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल से किया था। १९१७ ई० में इनकी वाणियों का संकलन 'बौद्ध गान और दोहा' के नाम से बांग्ला भाषा में किया गया। इसके बाद सिद्धों के विषय में विस्तृत और विवेचनात्मक जानकारी सबसे पहले राहुल सांकृत्यायन ने 'हिन्दी काव्यधारा' में दी जो १०४५ में प्रकाशित हुई थी। राहुल ने सिद्ध साहित्य का आरम्भ सरहपा से माना है और इनका (सरहपा का) समय ७६९ ई० के लगभग माना है।[1,2] उन्होने सिद्धों की संख्या चौरासी माना है जिनमें ८० पुरुष और ४ स्त्रियाँ (कनखलापा, लक्ष्मीकरा, मणिभद्रा, मेखलापा) थीं। मत्स्येंद्रनाथ (मच्छंदरनाथ), जालान्धरनाथ, नागार्जुन, चर्पटनाथ और गोरखनाथ - वे सिद्ध कवि हैं जो नाथ साहित्य में भी आते हैं।

प्रसार क्षेत्र

सिद्ध सा हित्य बिहार से लेकर असम तक फैला था। राहुल संकृत्यायन ने 84 सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है जिनमें सिद्ध 'सरहपा' से यह साहित्य आरम्भ होता है। बिहार के नालन्दा विद्यापीठ इनके मुख्य अड्डे माने जाते हैं। बख्तियार खिलजी ने आक्रमण कर इन्हें भारी नुकसान पहुचाया बाद में यह 'भोट' देश चले गए। इनकी रचनाओं का एक संग्रह महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने बांग्ला भाषा में 'बौद्धगान-ओ-दोहा' के नाम से निकाला।

- सिद्ध कवि व्यवहारिक पक्ष पर बल देते थे[3,4]

- सिद्ध कवियों ने मंत्र जादू टोना चमत्कार शब्दों द्वारा तांत्रिक साधना पद्दी अपनाएं
- उन्होंने ब्राह्मण धर्म का विरोध किया
- सिद्ध कवि योग साधना पर विशेष बल देते थे
- सिद्ध कवि मोक्ष पाने की अपेक्षा सिद्धियों पर जोर देते थे
- सिद्ध कवियों ने जाति पांति एवं वर्ण भेद का उठकर मुकाबला किया
- सिद्धू ने रहस्यवादी प्रवृत्ति को अपनाकर संध्या भाषा के माध्यम से यह प्रवचन देते थे अपभ्रंश प्लस अर्धमगधी

- सिद्ध साहित्य की काव्य में कबीर सूरदास विद्यापति ने काव्य को प्रभावित किया

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

- बिहार पश्चिम बंगाल श्री पर्वत आदि प्रसिद्ध कवि छोटी जातियों एवं आरक्षित में से थे

वर्गीकरण

सिद्ध साहित्य को मुख्यतः निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:-

- (१) नीति या आचार संबंधित साहित्य
- (२) उपदेश परक साहित्य
- (३) साधना सम्बन्धी या रहस्यवादी साहित्य

भाषा-शैली

सिद्धों की भाषा में 'उलटबासी' शैली का पूर्व रुप देखने को मिलता है। इनकी भाषा को संध्या भाषा कहा गया है।[5,6]

सिद्ध साहित्य की प्रमुख विशेषताएं

- इस साहित्य में तंत्र साधना पर अधिक बल दिया गया।
- साधना पद्धति में शिव-शक्ति के युगल रूप की उपासना की जाती है।
- इसमें जाति प्रथा एवं वर्णभेद व्यवस्था का विरोध किया गया।
- इस साहित्य में ब्राह्मण धर्म का खंडन किया गया है।
- सिद्धों में पंच मकार (मांस, मछली, मदिरा, मुद्रा, मैथुन) की दुष्प्रवृति देखने को मिलती है। हालांकि तंत्रशास्त्र में इसका अर्थ भिन्न बताया गया है।

प्रमुख सिद्ध कवि व उनकी रचनाएँ

- सरहपा (769 ई.) - दोहाकोष
- लुइपा (773 ई. लगभग) -- लुइपादगीतिका
- शबरपा (780 ई.) -- चर्यापद , महामुद्रावज्रगीति , वज्रयोगिनीसाधना
- कण्हपा (820 ई. लगभग) -- चर्याचर्यविनिश्चय, कण्हपादगीतिका
- डोंभिपा (840 ई. लगभग) -- डोंबिगीतिका, योगचर्या, अक्षरद्विकोपदेश
- भूसुकपा-- बोधिचर्यावतार
- आर्यदेवपा -- कावेरीगीतिका
- कंवणपा -- चर्यागीतिका
- कंबलपा -- असंबंध-सर्ग दृष्टि
- गुंडरीपा -- चर्यागीति
- जयनन्दीपा -- तर्क मुदँगर कारिका[7,8]
- जालंधरपा -- वियुक्त मंजरी गीति, हुँकार चित्त , भावना क्रम

- दारिकपा -- महागुह्य तत्त्वोपदेश
- धामपा -- सुगत दृष्टिगीतिकाचर्या

आलोचना

सिद्ध साहित्य को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सांप्रदायिक शिक्षा मात्र कहा जिनका बाद में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने खण्डन किया। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सिद्ध साहित्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, "जो जनता तात्कालिक नरेशों की स्वेच्छाचारिता, पराजय त्रस्त होकर निराशा के गर्त में गिरी हुई थी, उनके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया।

विचार-विमर्श

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।

सम्पूर्ण गीता के साररूप इस द्वितीय अध्याय में सांख्ययोग के पश्चात् इस श्लोक में कर्मयोग का दिशा निर्देश है। इसी अध्याय में आगे भक्तियोग का भी संक्षेप में संकेत किया गया है।
यह प्रथम अवसर है जब श्रीकृष्ण इस श्लोक में आत्मोन्नति की साधना का स्पष्टरूप से वर्णन करते हैं। इसलिये इसका सावधानीपूर्वक अध्ययन गीता के समस्त साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

शरीर मन और बुद्धि इन तीन उपाधियों के माध्यम से ही हम जीवन में विभिन्न अनुभव प्राप्त कर सकते हैं। इन तीन स्तरों पर प्राप्त होने वाले सभी अनुभवों का समावेश इस श्लोक में कथित तीन प्रकार के द्वन्द्वों में किया गया है। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों को सुख और दुख के रूप में अनुभव करना बुद्धि की प्रतिक्रिया है लाभ और हानि ये मन की कल्पनायें हैं जिस कारण वस्तु की प्राप्ति पर हर्ष और वियोग पर शोक होना स्वाभाविक है भौतिक जगत् की उपलब्धियों को यहाँ जयपराजय शब्द से सूचित किया है। श्रीकृष्ण का उपदेश यह है कि मनुष्य को इस प्रकार की विषम परिस्थितियों में सदैव मन के सन्तुलन को बनाये रखना चाहये। इसके लिये सतत जागरूकता की आवश्यकता है।
समुद्र स्नान के इच्छुक व्यक्ति को समुद्र स्नान करने की कला ज्ञात होनी चाहिये अन्यथा समुद्र की उत्तुंग तरंगे उस व्यक्ति को व्यथित कर देंगी और उसे जल समाधि में खींच ले जायेंगी किन्तु बड़ी लहरों के नीचे झुकने और छोटी लहरों पर सवार होने की कला जो व्यक्ति जानता है वही समुद्र स्नान का आनन्द उठा सकता है। [8,9]यह आशा करना कि समुद्र की लहरें शान्त हो जायें अथवा स्नान के समय कष्ट न पहुँचायें अपनी सुविधा के लिये समुद्र को उसके स्वरूप का त्याग करने के आदेश देने के समान है किन्तु अज्ञानी पुरुष जीवन में यही चाहता है कि किसी प्रकार की समस्यायें उसके सामने न आयें जो सर्वथा असम्भव है। जीवन के समुद्र में सुख दुख लाभहानि और जयपराजय की लहरें उठना अनिवार्य है अन्यथा पूर्ण गतिहीनता ही मृत्यु है।
यदि जीवन का स्वरूप ही एक उफनते तूफानी समुद्र के समान है तो उसमें उठती उत्तुंग तरंगों के आघातों अथवा गहन गह्वरों से विचलित हुये बिना जीवन जीने की कला हमको सीखनी चाहिये। इन उठती हुई तरंगों में किसी एक के साथ भी तादात्म्य स्थापित कर लेना मानो समुद्र की सतह पर उसके साथ इधरउधर बहते जाना है और न कि उस प्रकाश के स्तम्भ के समान स्थिर रहना है जो वहीं विक्षुब्ध लहरों के बीच निश्चल खड़ा रहता है और जिसकी नींव समुद्र तल की चट्टान पर निर्मित होती है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध करने के लिये प्रेरित करते हैं किन्तु साथ में इस समत्व भाव का उपदेश भी देते हैं अन्यथा कर्म में प्रवृत्त हुआ व्यक्ति अनेक अवसरों पर अपनी ही नकारात्मक प्रवृत्तियों का शिकार बन जाता है। मन के इस समभाव के होने पर ही मनुष्य वास्तविक स्फूर्ति और प्रेरणा का जीवन जी सकता है और ऐसे व्यक्ति की उपलब्धियां ही सच्ची सफलता की आभा से युक्त होती हैं।
यह सुविदित तथ्य है कि सभी कार्य क्षेत्रों में जो कर्म स्फूर्ति और प्रेरणा युक्त होते हैं उनकी अपनी ही दैवी चमक होती है जिनकी न प्रतिकृति हो सकती है और न ही उसे बारम्बार दोहराया जा सकता है। किसी भी कार्य क्षेत्र का व्यक्ति चाहे वह कवि हो या कलाकार चिकित्सक हो या वक्ता जब अपनी सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि या कृति प्रस्तुत करता है तब वह सर्वसम्मति से प्रेरणा का कार्य ही स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार हम जब दैवी प्रेरणा के आनन्द से अविभूत कोई कार्य कर रहे होते हैं तब हमारी कल्पनायें विचार और कर्म अपनी एक निराली ही सुन्दरता से ओतप्रोत होते हैं जिन्हें एक यन्त्र के समान पुन दोहराया नहीं जा सकता।[9] प्रसिद्ध चित्रकार दा विन्सी अपनी श्रेष्ठ कृति मन्द स्मितवदना मोनालिसा का चित्र दोबारा चित्रित नहीं कर सका महाकवि कीट्स की लेखनी उड़ते हुये बुलबुल के गान को दूसरी बार नहीं लिख पायी बीथोवेन पियानों पर फिर एक बार वही मधुर स्वर झंकृत नहीं कर सका भगवान् श्रीकृष्ण ने भी अर्जुन के प्रार्थना करने पर युद्ध के पश्चात् दोबारा गीता सुनाने में अपनी असमर्थता स्वीकार की पाश्चात्य विचारकों के लिये प्रेरणा संयोग की कोई रहस्यमय घटना है जिस पर मानव का कोई नियन्त्रण नहीं रहता जबकि भारतीय मनीषियों के अनुसार दैवी प्रेरणा का जीवन मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य है जिसे वह अपने आत्मस्वरूप के साथ पूर्णतया तादात्म्य

स्थापित करके जी सकता है। समत्व भाव का वह जीवन जहाँ हम जीवन में आने वाली परिस्थितियों से अप्रभावित अपने मन और बुद्धि के साक्षी बनकर रहते हैं अहंकार की विस्मृति के क्षण हैं और तब हमारे कर्म उषकाल की जगमगाती आभा से समृद्ध होते हैं। सामान्य मनुष्य की धारणा होती है कि अहंकार के अभाव में हम कार्य करने में अकुशल या असमर्थ बन जायेंगे परन्तु यह मिथ्या धारणा है। प्रेरणा की आभा ही सामान्य सफलता को भी महान् उपलब्धि की ऊँचाई तक पहुँचाती है।

प्राचीन हिन्दू योगियों ने एक साधना का आविष्कार किया जिसके अभ्यास से मन और बुद्धि की युक्तता एवं समता सम्पादित की जा सकती है। इस साधना को योग कहते हैं। वैदिक काल के लोगों को इसका ज्ञान था तथा इसका अभ्यास करके वे योगी का जीवन जीते थे। उन्होंने असाधारण उपलब्धियों को अर्जित करके राष्ट्र के लिये स्वर्णयुग का निर्माण किया।

भारत जैसे देश में वैदिक काल में निश्चित ही आस्तिक दर्शन प्रचलित होगा परन्तु उसकी उपयोगिता जीवन के सभी क्षेत्रों में समान रूप से है। यदि उसकी सार्वक्षेत्रीय उपयोगिता न हो तो वह वास्तविक अर्थ में दर्शन ही नहीं है। अधिक से अधिक उसे किसी श्रेष्ठ पुरुष का जीवन विषयक मत माना जा सकता है जिसका सीमित उपयोग हो किन्तु तत्त्वज्ञान के रूप में वह कभी स्वीकार नहीं हो सकता।

अब तक के उपदेश में भगवान् ने वे सभी आवश्यक तर्क अर्जुन के समक्ष प्रस्तुत किये जिनको समझकर प्राप्त परिस्थितियों में स्वबुद्धि से उचित निर्णय लेने में वह समर्थ हो सके। सभी भौतिक परिस्थितियों के मूल्यांकन में केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण को ही अन्तिम प्रमाण नहीं माना जा सकता। जीवन की प्रत्येक परिस्थिति या चुनौती का मूल्यांकन आध्यात्मिक दृष्टि के साथसाथ बुद्धि के स्तर पर तर्क मन के स्तर पर नैतिकता और भौतिक स्तर पर परम्परा और सामाजिक रीति रिवाज की दृष्टि से भी करना आवश्यक है। इन सब के द्वारा बिना किसी विरोधाभास के यदि किसी एक सत्य का संकेत मिलता है तो निश्चय ही वह दिव्य मार्ग है जिस पर मनुष्य को प्रत्येक मूल्य पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये।

केवल नैतिकता की भावना से युद्ध की ओर देखने से अर्जुन उस परिस्थिति को उचित रूप में समझ नहीं सका। शत्रुपक्ष में खड़े अपने ही बन्धुबान्धवों को विनष्ट करना नैतिकता के विरुद्ध था। किन्तु भावावेशजनित मन की भ्रमित अवस्था में उसने अन्य दृष्टिकोणों पर विचार नहीं किया जिससे वह पुन संयमित हो सकता था। ऐसे अवसर पर जो करने योग्य है वही करता हुआ अर्जुन भगवान् कृष्ण की शरण में जाता है। श्रीकृष्ण उसके मार्गदर्शन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर जीवन के सभी दृष्टिकोणों को उसके सामने प्रस्तुत करते हैं। सम्पूर्ण गीता में श्रीकृष्ण मनुष्य को प्राप्त विवेकशील बुद्धि की भूमिका निभाते हैं जो कठोपनिषद् की भाषा में देहरूपी रथ का योग्य सारथि है।[6,7,8]

इस प्रकार आध्यात्मिक बौद्धिक नैतिक और पारम्परिक दृष्टियों से विचार करने के पश्चात् पूर्व के श्लोक में भगवान अर्जुन को युद्ध करने की सम्मति देते हैं। जिस भावना से कर्म करना चाहिये उसका विवेचन इस श्लोक में श्रीकृष्ण ने किया है। शरीरादि अनात्म उपाधियों के साथ तादात्म्य करने से जो चिन्तायें विक्षेप व्याकुलतायें होती हैं उनसे ऊपर उठकर सभी विषम परिस्थितियों में समभाव में स्थित होकर कर्म करना चाहिये।

मन के समत्व भाव में रहने से जीवन की वास्तविक सफलता निश्चित होती है। इसके पूर्व हम देख चुके हैं कि जीवन में किस प्रकार पूर्व संचित वासनायें क्षीण हो सकती हैं। जगत् में सभी जीव अपनीअपनी वासनाओं का क्षय करने के लिये ही विभिन्न शरीर धारण किये हुये हैं। इस प्रकार वृक्ष पशु अथवा मनुष्य सभी वासनाओं के भण्डार हैं।

सब परिस्थितियों में समभाव में स्थित हुआ मन वासनाओं के निस्सारण का मार्ग बनता है। यह द्वार जब अहंकार और स्वार्थ से अवरुद्ध होता है तब वासनाक्षय के स्थान पर असंख्य नयी वासनाएँ उत्पन्न होती जाती हैं। द्वन्द्वों के कारण हुआ विक्षेप अहंकार के जन्म और वृद्धि के कारण है। कर्मयोग की भावना से कर्म करते हुये जीवन जीने पर अन्तकरण की शुद्धि प्राप्त होती है। इस कर्मयोग का विस्तृत विवेचन गीता के तृतीय अध्याय में है।

तत्त्वज्ञान और सामान्यजन की दृष्टि से विचार करने के पश्चात् भगवान् अर्जुन को कर्मयोग की भावना से युद्ध करने का उपदेश देते हैं। तत्त्वज्ञान को समझ कर उसे जीवन में जीना ही व्यावहारिक धर्म है।

इसके पश्चात् इस अध्याय में वेदान्त ज्ञान का व्यवहार में उपयोग करने के उपायों एवं साधनों का निरूपण किया है। भगवान् कहते हैं

सुखदुःखको समान तुल्य समझकर अर्थात् (उनमें) रागद्वेष न करके तथा लाभहानिको और जयपराजयको समान समझकर उसके बाद तू युद्धके लिये चेष्टा कर इस तरह युद्ध करता हुआ तू पापको प्राप्त नहीं होगा। यह प्रासङ्गिक उपदेश है।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य इत्यादि श्लोकोंद्वारा शोक और मोहको दूर करनेके लिये लौकिक न्याय बतलाया गया है परंतु पारमार्थिक दृष्टिसे यह बात नहीं है।

यहाँ प्रकरण परमार्थदर्शनका है जो कि पहले (श्लोक 30) तक कहा गया है। अब शास्त्रके विषयका विभाग दिखलानेके लिये एषा तेऽभिहिता इस श्लोकद्वारा उस (परमार्थदर्शन) का उपसंहार करते हैं।

वज्रयानी चौरासी सिद्धों में सरहपा को आदिम सिद्ध माना गया है। इन्हें सरहपा भी कहते हैं। इनके दूसरे नाम राहुलभद्र और सरोज-वज्र हैं। पूर्वी प्रदेश के ये किसी 'राज्ञी' नगरी के निवासी थे। वर्तमान में यह स्पष्ट नहीं है कि इस नाम की नगरी कहाँ पर थी। सरहपा पाल वंशीय राजा धर्मपाल के समकालीन थे। धर्मपाल का समय ई. 768-809 माना जाता है। डॉ. विनयतोष भट्टाचार्य ने

सरहपा का समय 633 ई. माना है किंतु किसी परिपुष्ट प्रमाण से सरहपा का काल यह सिद्ध नहीं होता। राहुल सांकृत्यायन ने सरहपा का समय 769 ई. स्थिर किया है जो अब हिंदी अकेडमिया में सर्वमान्य है।[5,6,7]
सिद्ध सरहपाद अच्छे विद्वान थे। अपने समय के ज्ञान के प्रसिद्ध केंद्र नालंदा से भी इनका जुड़ाव रहा था। आगे के वर्षों में ये बौद्ध धर्म की तंत्र-मंत्र प्रधान वज्रयान शाखा से जुड़ गए। लोक-मान्यता है कि श्रीपर्वत (आंध्र प्रदेश) पर भी सरहपाद ने वज्रयान तंत्र की कठिन साधना की थी।

सिद्ध सरहपा के 32 ग्रन्थों की चर्चा की जाती रही है। डॉ. प्रबोधचंद्र बागची ने इनकी रचनाओं को 'दोहाकोश' नामक ग्रंथ में संकलन किया है। 'दोहाकोश' में तिल्लोपा और कान्हपा की रचनाएँ भी संकलित हैं। सरहपाद के दोहा-कोष पर श्री अद्वयवज्र की संस्कृत-पंजिका भी खोज में मिली है, जो कलकत्ता यूनिवर्सिटी के 'जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स' में प्रकाशित हुई है।
सरहपा के साहित्य से जो इनकी जीवन-दृष्टि परिलक्षित होती है, उसके मुख्य आधार सहज संयम, पाखंड-विनाश, गुरु सेवा, सहज मार्ग और महासुख की प्राप्ति है। वज्रयान के परवर्ती सिद्धों की बानी में जो स्वच्छन्दाचार दिखाई देता है, वह सरहपा की बानी में लगभग नहीं के बराबर है। सहज शून्यावस्था से प्राप्त महासुख का, सहज में स्थित महारस का इनकी बानी में बडा सुंदर वर्णन मिलता है। सरहपा के मतानुसार समरस सहज अवस्था में स्थित हो जाना ही साधक का परम पुरुषार्थ है। उस अवस्था में कुछ भी भेद-भाव शेष नहीं रह जाता। वर्ण-व्यवस्था का, ऊँच-नीच भाव का तथा धर्म के नाम पर चलने वाले बाह्याचारों का सरहपा ने बडा ज़ोरदार खंडन किया है। इन्होंने ब्राह्मणों की ही नहीं, जैन मुनियों की भी ख़बर ली है, उनके लोमोत्पाटन और पिच्छी-ग्रहण जैसे संस्कारों की हँसी उड़ाई है।

इनकी भाषा का नाम विद्वानों ने 'संधाभाषा' या 'संध्याभाषा' दिया है और इसका अर्थ यह बताया है कि यह एक ऐसी भाषा है जिसमें संध्या के समान प्रकाश तथा अंधकार का मिश्रण है। ज्ञान के आलोक से उस भाषा में निहित भाव स्पष्ट हो जाते हैं। सरहपा की भाषा मगही अपभ्रंश है, जो निश्चय ही हिन्दी का पूर्व रूप है। डॉ. बी. भट्टाचार्य ने इसे बंगला का पूर्वरूप सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है। बच्चनसिंह ने इनकी भाषा पर विचार करते हुए लिखा है कि 'आक्रोश की भाषा का पहला प्रयोग सरहपा में ही दिखाई देता है।'

परिणाम

सिद्ध बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा से सम्बंधित हैं। सिद्धों ने बौद्ध-धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जन भाषा में जो साहित्य लिखा वह हिन्दी के सिद्ध साहित्य के अन्तर्गत आता है। राहुल सांकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों के नामो का उल्लेख किया है। सिद्ध साहित्य का आरम्भ सिद्ध सरहपा से होता है। सरहपा को प्रथम सिद्ध माना जाता है। इन सिद्धों में
सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा तथा कुक्कुरिपा हिन्दी के प्रमुख सिद्ध कवि हैं।[1]

दर्शन

सिद्ध धार्मिक कर्मकाण्ड, बाह्याचार, तीर्थाटन आदि के विरोधी थे। इन्होंने अपनी रचनाओं में नैरात्म्य भावना, कायायोग, सहज, शून्य तथा समाधि की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया है। पहले सिद्ध सरहपा ने सहजयान का प्रवर्तन किया था। उन्होंने सहज जीवन और सहज साधना पर जोर दिया था।

साहित्य

सिद्ध दर्शन को सिद्ध साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है। इसकी भाषा अपभ्रंश एवं पुरानी हिंदी है। अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए इन्होंने संधा भाषा का प्रयोग किया है। यह अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों का संकेत करनेवाली प्रतीक-भाषा है।[4,5,6] इसका तात्पर्य प्रतीकार्थ खुलने पर ही प्रकट होता है।

स्थान

सिद्धों का स्थान पूर्वी भारत माना जाता है। बिहार, बंगाल, ओड़िसा, असम आदि क्षेत्र सिद्ध साधकों के प्रभाव वाले माने जाते हैं। इनके गढ़ तत्कालीन शिक्षा के केंद्र के रूप में विख्यात नालंदा के आसपास के क्षेत्र में थे।

सिद्ध, सम्स्कृत भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है जिसने सिद्धि प्राप्त कर ली हो। सिद्धि का अर्थ महान शारीरिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धि से है या ज्ञान की प्राप्ति से है। जैन दर्शन में सिद्ध शब्द का प्रयोग उन आत्माओं के लिए किया जाता है जो संसार चक्र से मुक्त हो गयीं हों।

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

जैन धर्म

यद्यपि सिद्ध निराकार और बिना शरीर के होते है, वे अक्सर जैन मंदिरों में इस तरह दर्शाए जाते हैं। के अनुसार

जैन धर्म में सिद्ध शब्द का प्रयोग मुक्त आत्मा, जिन्होंने अपने सारे कर्मो का नाश कर मोक्ष प्राप्त किया है, उन्हें संबोधित करने के लिए किया जाता हैं।

वर्णरत्नाकर में वर्णित ८४ सिद्ध

ज्योतीरीश्वर ठाकुर द्वारा सन १५०६ में मैथिली में रचित वर्णरत्नाकर में ८४ सिद्धों के नामों का उल्लेख है। इसकी विशेष बात यह है कि इस सूची में सर्वाधिक पूज्य नाथों और बौद्ध सिद्धाचार्यों के नाम में सम्मिलित किए गये हैं। [2,3,4]

हिंदी साहित्य परंपरा में सिद्ध साहित्य का महत्वपूर्ण योगदना रहा है। सिद्ध साहित्य ने भक्तिकाल की सगुण और निर्गुण दोनों धाराओं को प्रभावित किया। सिद्धों का सम्बन्ध बौद्ध धर्म की बज्रयानी शाखा से है। ये भारत के पूर्वी भाग में सक्रिय थे। इनकी संख्या 84 मानी जाती है जिनमें सरहप्पा, शवरप्पा, लुइप्पा, डोम्भिप्पा, कुक्कुरिप्पा आदि मुख्य हैं। सरहप्पा प्रथम सिद्ध कवि थे। इन्होंने जातिवाद और बाह्याचारों पर प्रहार किया। देहवाद का महिमा मण्डन किया और सहज साधना पर बल दिया। ये महासुखवाद द्वारा ईश्वरत्व की प्राप्ति पर बल देते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार - चूंकि जैनियों, सिद्धों, नाथों की रचनाएं धार्मिक भावना में लिखी गई थीं इसलिए साहित्य के मूल्य त क नहीं पहुंचती थीं। इसलिए उन्हें प्रथम काल की साहित्यिक परिधि में सम्मिलित नहीं किया गया। [1]

बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य देश भाषा (जनभाषा) में लिखा गया वही सिद्ध साहित्य कहलाता है। यह साहित्य बिहार से लेकर असम तक फैला था। राहुल संकृत्याय न ने 84 सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है जिनमें सिद्ध 'सरहपा' से यह साहित्य आरम्भ होता है । बिहार के नालन्दा विद्यापीठ इनके मुख्य अड्डे माने जाते हैं। बाद में यह 'भोट' देश चले गए। इन की रचनाओं का एक संग्रह महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने बांग्ला भाषा में 'बौद्धगान - ओ - दोहा' के नाम से निकाला। सिद्धों की भाषा में 'उलटबासी' शैली का पूर्व रुप देखने को मिलता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सिद्ध साहित्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, "जो जनता तात्कालिक नरेशों की स्वेच्छाचारिता, पराजय त्रस्त होकर निराशा के गर्त में गिरी हुई थी, उनके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। साधना अवस्था से निकली सिद्धों की वाणी 'चरिया गीत / चर्यागीत' कहलाती है। [2]

हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि – "धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपदेश होना काव्यत्व का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए"[3]

सिद्ध साहित्य को मुख्यतः निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है :-

(१) नीति या आचार संबंधित साहित्य
(२) उपदेश परक साहित्य
(३) साधना सम्बन्धी या रहस्यवादी साहित्य

सिद्ध सरहपा (सरहपाद, सरोजवज्र, राहुल भ्रद्र) से सिद्ध सम्प्रदाय की शुरुआत मानी जाती है। यह प हले सिद्ध योगी थे। जाति से यह ब्राह्मण थे। राहुल सांकृत्यायन ने इनका जन्मकाल 769 ई. का माना , जिससे सभी विद्वान सहमत हैं। इनके द्वारा रचित बत्तीस ग्रंथ बताए जाते हैं जिनमे से 'दोहाकोश' हिन्दी की रचनाओं मे प्रसिद्ध है। इन्होने पाखण्ड और आडम्बर का विरोध किया तथा गुरू सेवा को महत्व दिया।[1,2]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

इनके बाद इनकी परम्परा को आगे बढ़ाने वाले प्रमुख सिद्ध हुए हैं क्रमश: इस प्रकार हैं :-
शबरपा : इनका जन्म 780 ई. में हुआ। यह क्षत्रिय थे। सरहपा से इन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। 'चर्यापद' इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। इनकी कविता का उदाहरण देखिये -

हेरि ये मेरि तइला बाड़ी खसमे समतुला
षुकड़ये सेरे कपासु फुटिला।
तइला वाड़िर पासेर जोहणा वाड़ि ताएला
फ़िटेली अंधारि रे आकासु फुलिआ॥

लुइपा : ये राजा धर्मपाल के राज्यकाल में कायस्थ परिवार में जन्मे थे। शबरपा ने इन्हें अपना शिष्य माना था। चौरासी सिद्धों में इनका सबसे ऊँचा स्थान माना जाता है। उड़ीसा के तत्कालीन राजा औ र मंत्री इनके शिष्य हो गए थे।
डोम्भिया : मगध के क्षत्रिय वंश में जन्मे डोम्भिया ने विरूपा से दीक्षा ग्रहण की थी। इनका जन्मकाल 840 ई. रहा। इनके द्वारा इक्कीस ग्रंथों की रचना की गई, जिनमें 'डोम्बि - गीतिका', 'योगाचर्या' और 'अक्षरद्विकोपदेश' प्रमुख हैं।
कण्हपा : इनका जन्म ब्राह्मण वंश में 820 ई. में हुआ था। यह कर्नाटक के थे, लेकिन बिहार के सो मपुरी स्थान पर रहते थे। जालंधरपा को इन्होंने अपना गुरु बनाया था। इनके लिखे चौहत्तर ग्रंथ बता ए जाते हैं। यह पौराणिक रूढ़ियों और उनमें फैले भ्रमों के खिलाफ थे।
कुक्कुरिपा : कपिलवस्तु के ब्राह्मण कुल में इनका जन्म हुआ। चर्पटीया इनके गुरु थे। इनके द्वारा रचित 16 ग्रंथ माने गए हैं। [4]
सिद्ध कवियों की रचनाएं -
सरहपा : दोहाकोश, उपदेश गीति, द्वादशोपदेश, डाकिनीगुहयावज्रगीति, चर्यागीति, चित्तकोष अजव्रज गीति । इनके कुल 32 ग्रंथ हैं ।शबरपा : चर्यापद, सितकुरु, वज्रयोगिनी, आराधन - विधि ।लुइपा : अभिसमयविभगं, तत्वस्वभाव दोहाकोष, बुद्धोदय, भगवदअमभिसय, लुइपा - गीतिका ।डोम्भिपा : अक्षरद्विकोपदेश, डोंबि गीतिका, नाड़ीविंदुद्वारियोगचर्या । इनके कुल २१ ग्रंथ हैं ।क ण्हपा : योगरत्नमाला, असबधदृष्टि, वज्रगीति, दोहाकोष, बसंत तिलक, कान्हपाद गीतिका ।दारिकपा : तथताद ष्टि, सप्तमसिद्धांत, ओड्डियान विनिर्गत - महागयह्यातत्वोपदेश ।शांतिपा : सुख दुख द्वयपरित्याग ।तंतिपा : चतुर्योगभावना ।विरुपा : अमृतसिद्ध, विरुप गीतिका, मार्गफलान्विताव वादक ।भुसुकपा : बोधिचर्यावतार, शिक्षा - समुच्चय ।वीणापा : वज्रडाकिनी निष्पन्नक्रम ।कुकुरिपा : तत्वसुखभावनासारियोगभवनोपदेश, स्रवपरिच्छेदन । मीनपा : बाहयतरंबोधिचितबंधोपदेश।महीपा : वायुतत्व, दोहा गीतिका।कंबलपाद : असबध दृष्टि, कंबलगीतिका। नारोपा : नाडपंडित गीतिका, वज्रगीति, ।गोरीपा : गोरखवाणी, पद - शिष्य दर्शनआदिनाथ : विमुक्त मर्जरीगीत, हुंकारचित बिंदु भावना क्रम।तिलोपा : करुणा भावनाधिष्ठान, म हा भद्रोपदेश।इनकी रचनाओं का एक संग्रह महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने बांग्ला भाषा में 'बौद्ध गान - ओ - दोहा' के नाम से निकाला। सिद्धों की भाषा में 'उलटबासी' शैली का पूर्व रुप देखने को मिलता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सिद्ध साहित्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि "जो जनता तात्कालिक नरे शों की स्वेच्छाचारिता, पराजय त्रस्त होकर निराशा के गर्त में गिरी हुई थी, उनके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। साधना अवस्था से निकली सिद्धों की वाणी 'चरिया गीत / च र्यागीत' कहलाती है। [5]सरहपा (769 ई.), शबरपा (780 ई.), भूसुकपा (नवीं सदी), लुइपा (830 ई - शबरपा के शिष्य), विरूपा (9 वीं सदी), डोम्भिपा (840 ई.), दारिकपा (9 वीं सदी), गंडरिपा (9 वीं सदी), कुकुरिपा (9 वीं सदी), कमरिपा (9 वीं सदी), कण्हपा (820 ई., जालन्धरपा के शिष्य), गोरक्षपा (9 वीं स दी), तिलोपा (9 वीं सदी)
राहुल सांकृत्यायन ने आदिकाल को सिद्ध सामंत युग कहा है। उनका कहना है कि - राहुल सांकृत्यायन को इस काल में दो प्रवृत्तियां लक्षित होती हुई - सिद्धों की बानी और सामंतों की स्तुति। [6] दरअसल मंत्रों की सिद्धि चाहने वाले सिद्ध कहलाए। सिद्धों का समय 797 ई. से लेकर 1257 ई. तक माना गया है। श्रीपर्वत सिद्धों का प्रधान केंद्र रहा है। सिद्धों के वि चारदर्शन के प्रमुख ग्रंथ - साधन समुच्चय, आदिकर्मप्रदीप और मंजुश्री मूलकल्प आदि प्रमुख ग्रंथ श्रीपर्वत पर लिखे गए हैं। सन् 1907 में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने सर्वप्रथम नेपाल में सिद्ध साहित्य का पता लगाया था।[6,7,8]

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

निष्कर्ष

सिद्ध चिकित्सा भारत के तमिलनाडु की एक पारम्परिक चिकित्सा पद्धति है। भारत में इसके अतिरिक्त आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियाँ भी प्रचलित हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि उत्तर भारत में यह पद्धति ९ नाथों एवं ८४ सिद्धों द्वारा विकसित की गयी जबकि दक्षिण भारत में १८ सिद्धों (जिन्हें 'सिद्धर' कहते हैं) द्वारा विकसित की गयी। इन सिद्धों को यह ज्ञान शिव और पार्वती से प्राप्त हुआ। यह चिकित्सा पद्धति भारत की ही नहीं, विश्व की सर्वाधिक प्राचीन चिकित्सा-पद्धति मानी जा सकती है।

सिद्ध काफी हद तक आयुर्वेद के समान है। इस पद्धति में रसायन का आयुर्विज्ञान तथा आल्केमी (रसायन विश्व) के सहायक विज्ञान के रूप में काफी विकास हुआ है। इसे औषध-निर्माण तथा मूल धातुओं के सोने में अंतरण में सहायक पाया गया। इसमें पौधों और खनिजों की काफी अधिक जानकारी थी और वे विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं की जानकारी रखते थे।

सिद्ध प्रणाली के सिद्धांत और शिक्षा मौलिक और व्यावहारिक दोनों हैं। यह आयुर्वेद के समान ही है इसकी विशेषता आंतरिक रसायन है। इस प्रणाली के अनुसार मानव शरीर ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति है (यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे) और इसी प्रकार से भोजन और औषधि भी, चाहे उनका उद्भव कहीं से भी हुआ हो। यह प्रणाली जीवन में उद्धार की परिकल्पना से जुड़ी हुई है। इस प्रणाली के प्रवर्तकों का मानना है कि औषधि और मनन-चिंतन के द्वारा इस अवस्था को प्राप्त करना संभव है।

सिद्ध प्रणाली आकस्मिक मामलों को छोड़ कर सभी प्रकार के रोगों का इलाज करने में सक्षम है। सामान्य तौर पर यह प्रणाली त्वचा संबंधी सभी समस्याओं का उपचार करने में सक्षम हैं; विशेष कर सोरियासिस, यौन संचारित संक्रमण, मूत्र के रास्ते में संक्रमण, यकृत की बीमारी और गैस्ट्रो आंत के रास्ते के रोग, सामान्य डेबिलिटी, पोस्टपार्टम एनेमिया, डायरिया और गठिया (आथ्रॉइटिस) और एलर्जी विकार के अतिरिक्त सामान्य बुखार आदि।[7,8]

निदान

निदान के लिये आठ चीजों का परीक्षण किया जाता है-

1. ना (जिह्वा)
2. वर्णम् (रंग)
3. कुरल् (ध्वनि)
4. कण् (आंखें)
5. तोडल् (स्पर्श)
6. मलम् (मल)
7. नीर (मूत्र)
8. नाडि (नाड़ी)

शबरपा सिद्ध साहित्य की रचना करने वाले चौरासी सिद्धों में से एक हैं। इनका जन्म 780 ई. में क्षत्रिय कुल में हुआ था। ये सरहपा के शिष्य थे। शबरों की तरह जीवन व्यतीत करने के कारण इन्हें शबरपा कहा जाने लगा। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'चर्यापद' है। 'चर्या' सिद्धों के धार्मिक अनुष्ठान में गाए जाने वाले गीतों को कहते हैं। 'चर्यापद' संधा भाषा-शैली के द्रष्टकूट में लिखे जाते हैं जिनके अर्थ दुहरे होते हैं। कुछ विद्वानों ने संध्या भाषा का अर्थ यह बताया है कि यह ऐसी भाषा है, जिसमें संध्या के समान प्रकाश तथा अंधकार का मिश्रण है, लेकिन ज्ञान के आलोक से उसकी सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। वहीं कुछ विद्वानों ने संध्या भाषा का अर्थ अभिसंधि या अभिप्राययुक्त वाणी बताया है। पंडित विधुशेखर शास्त्री ने बताया कि "मूल शब्द संध्या भाषा नहीं, बल्कि संधा भाषा रहा होगा।" सिद्धों के दोहों में मतों का खंडन-मंडन होता है और चर्यापदों में सिद्धों की अनुभूति और रहस्य-भावना प्रकट हुई है। सिद्धों का दोहा और चर्यापद संत-साहित्य में साखी और सबद में रूपांतरित हो गया। सिद्धों के चर्यापदों की भाषा उनके दोहों की तुलना में अपभ्रंश की रूढ़ियों से अधिक मुक्त होती हुई दिखायी पड़ती है।
शबरपा ने माया-मोह का विरोध करके सहज जीवन पर बल दिया तथा उसी को महासुख की प्राप्ति का मार्ग बताया। शबरपा वज्रयोगिनी साधना के प्रवर्तक भी बताये गये हैं। डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने ग्रंथ 'सिद्ध-साहित्य' में इनके विषय में लिखा है कि "शबरपा को तारानाथ ने 'नव-सरह' नाम भी दिया है। ये सरह की शिष्य-परंपरा में तीसरे सिद्ध थे। सुम्प म्खन पो के अनुसार वे (भागल या) बंगाल देश के शबर थे। किंतु तारानाथ उन्हें पूर्वी भारत की किसी शबरपा नर्तक जाति का बताते हैं। नागार्जुन से दीक्षा लेकर वे श्रीपर्वत पर साधना करने चले गये थे। उनकी दो महामुद्राएँ थीं लोकी और गुनी, और वे दोनों के साथ रहते थे। दोनों बहनें

| ISSN: 2395-7852 | www.ijarasem.com | Impact Factor: 5.121 |Bimonthly, Peer Reviewed & Referred Journal|

| Volume 5, Issue 5, September 2018 |

थीं और उनका चर्यानाम डाकिनी पद्मावती तथा ज्ञानावती था। तारानाथ के वर्णन से यह भी संकेत मिलता है कि दोनों ही इनकी बहनें थीं और उन्हीं से महामुद्रा-साधना कर बाह्य रूप से शबरपा पापमय जीवन बिताते थे।"

एक अन्य स्थान पर यह भी उल्लेख मिलता है कि इन्होंने अद्वनेत्र को शिक्षा दी थी जिसके कारण राहुल जी शबरपा नाम के दो सिद्ध मानते हैं। शबरपा के 16 ग्रंथ तजूर में प्राप्य हैं जिनमें से छह अपभ्रंश से अनूदित हैं।[9]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. Dasgupta, Sashibhusan (1995). Obscure Religious Cults, Firma K.L.M., Calcutta, ISBN 81-7102-020-8, pp.203ff, 204
2. ↑ Shastri Haraprasad (ed.) (1916, 3rd edition 2006). Hajar Bacharer Purano Bangala Bhasay Bauddhagan O Doha (in Bengali), Kolkata: Vangiya Sahitya Parishad, pp.xxxv-vi
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक-डा॰ नगेन्द्र, संस्करण १९८५, प्रकाशक- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११००२, पृष्ठ- ७९
4. **आचार्य रामचंद्र शुक्ल**, **हिंदी साहित्य का इतिहास**, **पृ.** 8, **नागरी प्रचारिणी सभा**, **वाराणसी।**
5. https://hi.wikipedia.org/wiki
6. **हजारी प्रसाद द्विवेदी**, **हिंदी साहित्य का आदिकाल**, **पृ.** 11, **राजकमल प्रकाशन**, **दिल्ली।**
7. https://vimisahitya.wordpress.com/
8. **हजारी प्रसाद द्विवेदी**, **हिंदी साहित्य का आदिकाल**, **पृ.** 23, **राजकमल प्रकाशन**, **दिल्ली।**
9. राहुल सांकृत्यायन, हिंदी काव्यधारा, पृ. 45, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।